रामचरित्मानस

बालकाण्ड

रावणादि का जन्म, तपस्या और उनका ऐश्वर्य तथा अत्याचार

दोहा :
*** भरद्वाज सुनु जाहि जब होई बिधाता बाम। धूरि मेरुसम जनक जम ताहि ब्यालसम दाम॥175॥
भावार्थ:
-(याज्ञवल्क्यजी कहते हैं-) हे भरद्वाज! सुनो, विधाता जब जिसके विपरीत होते हैं, तब उसके लिए धूल सुमेरु पर्वत के समान (भारी और कुचल डालने वाली), पिता यम के समान (कालरूप) और रस्सी साँप के समान (काट खाने वाली) हो जाती है॥175॥ चौपाई:
*** काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भयउ निसाचर सहित समाजा॥ दस सिर ताहि बीस भुजदंडा। रावन नाम बीर बरिबंडा॥1॥
भावार्थ:
-हे मुनि! सुनो, समय पाकर वही राजा परिवार सहित रावण नामक राक्षस हुआ। उसके दससिर और बीस भुजाएँ थीं और वह बड़ा ही प्रचण्ड शूरवीर था॥1॥
*** भूप अनुज अरिमर्दन नामा। भयउ सो कुंभकरन बलधामा॥ सचिव जो रहा धरमरुचि जासू। भयउ बिमात्र बंधु लघु तासू॥2॥
भावार्थ:
-अरिमर्दन नामक जो राजा का छोटा भाई था, वह बल का धाम कुम्भकर्ण हुआ। उसका जो मंत्री था, जिसका नाम धर्मरुचि था, वह रावण का सौतेला छोटा भाई हुआ ॥2॥
*** नाम बिभीषन जेहि जग जाना। बिष्नुभगत बिग्यान निधाना॥ रहे जे सुत सेवक नृप केरे। भए निसाचर घोर घनेरे॥3॥
भावार्थ:
-उसका विभीषण नाम था, जिसे सारा जगत जानता है। वह विष्णुभक्त और ज्ञान-विज्ञान का भंडार था और जो राजा के पुत्र और सेवक थे, वे सभी बड़े भयानक राक्षस हुए॥3॥
*** कामरूप खल जिनस अनेका। कुटिल भयंकर बिगत बिबेका॥ कृपा रहित हिंसक सब पापी। बरनि न जाहिं बिस्व परितापी॥4॥

भावार्थ:

-वे सब अनेकों जाति के, मनमाना रूप धारण करने वाले, दुष्ट, कुटिल, भयंकर, विवेकरहित, निर्दयी, हिंसक, पापी और संसार भर को दुःख देने वाले हुए, उनका वर्णन नहीं हो सकता॥4॥

दोहा :

*** उपजे जदपि पुलस्त्यकुल पावन अमल अनूप। तदपि महीसुर श्राप बस भए सकल अघरूप॥176॥

भावार्थ:

-यद्यपि वे पुलस्त्य ऋषि के पवित्र, निर्मल और अनुपम कुल में उत्पन्न हुए तथापि ब्राह्मणों के शाप के कारण वे सब पाप रूप हुए॥176॥

चौपाई :

*** कीन्ह बिबिध तप तीनिहुँ भाई। परम उग्र नहिं बरनि सो जाई॥ गयउ निकट तप देखि बिधाता। मागहु बर प्रसन्न मैं ताता॥1॥

भावार्थ:

-तीनों भाइयों ने अनेकों प्रकार की बड़ी ही कठिन तपस्या की, जिसका वर्णन नहीं हो सकता। (उनका उग्र) तप देखकर ब्रह्माजी उनके पास गए और बोले- हे तात! मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगो॥1॥

*** करि बिनती पद गहि दससीसा। बोलेउ बचन सुनहु जगदीसा॥ हम काहू के मरहिं न मारें। बानर मनुज जाति दुइ बारें॥2॥

भावार्थ:

-रावण ने विनय करके और चरण पकड़कर कहा- हे जगदीश्वर! सुनिए, वानर और मनुष्य- इन दो जातियों को छोड़कर हम और किसी के मारे न मरें। (यह वर दीजिए)॥2॥

*** एवमस्तु तुम्ह बड़ तप कीन्हा। मैं ब्रह्माँ मिलि तेहि बर दीन्हा॥ पुनि प्रभु कुंभकरन पहिं गयऊ। तेहि बिलोकि मन बिसमय भयऊ॥3॥

भावार्थ:

-(शिवजी कहते हैं कि-) मैंने और ब्रह्मा ने मिलकर उसे वर दिया कि ऐसा ही हो, तुमने बड़ा तप किया है। फिर ब्रह्माजी कुंभकर्ण के पास गए। उसे देखकर उनके मन में बड़ा आश्चर्य हुआ॥3॥

*** जौं एहिं खल नित करब अहारू। होइहि सब उजारि संसारू॥ सारद प्रेरि तासु मति फेरी। मागेसि नीद मास षट केरी॥4॥

भावार्थ:

-जो यह दुष्ट नित्य आहार करेगा, तो सारा संसार ही उजाड़ हो जाएगा। (ऐसा विचारकर) ब्रह्माजी ने सरस्वती को प्रेरणा करके उसकी बुद्धि फेर दी। (जिससे) उसने छह महीने की नींद माँगी॥4॥

दोहा :

*** गए बिभीषन पास पुनि कहेउ पुत्र बर मागु। तेहिं मागेउ भगवंत पद कमल अमल

अनुरागु॥177॥

भावार्थ:

-फिर ब्रह्माजी विभीषण के पास गए और बोले- हे पुत्र! वर माँगो। उसने भगवान के चरणकमलों में निर्मल (निष्काम और अनन्य) प्रेम माँगा॥177॥

चौपाई :

*** तिन्हहि देइ बर ब्रह्म सिधाए। हरषित ते अपने गृह आए॥ मय तनुजा मंदोदरि नामा। परम सुंदरी नारि ललामा॥1॥

भावार्थ:

-उनको वर देकर ब्रह्माजी चले गए और वे (तीनों भाई) हर्षित हेकर अपने घर लौट आए। मय दानव की मंदोदरी नाम की कन्या परम सुंदरी और स्त्रियों में शिरोमणि थी॥1॥

*** सोइ मयँ दीन्हि रावनहि आनी। होइहि जातुधानपति जानी॥ हरषित भयउ नारि भलि पाई। पुनि दोउ बंधु बिआहेसि जाई॥2॥

भावार्थ:

-मय ने उसे लाकर रावण को दिया। उसने जान लिया कि यह राक्षसों का राजा होगा। अच्छी स्त्री पाकर रावण प्रसन्न हुआ और फिर उसने जाकर दोनों भाइयों काविवाह कर दिया॥2॥

*** गिरि त्रिकूट एक सिंधु मझारी। बिधि निर्मित दुर्गम अति भारी॥ सोइ मय दानवँ बहुरि सँवारा। कनक रचित मनि भवन अपारा॥3॥

भावार्थ:

-समुद्र के बीच में त्रिकूट नामक पर्वत पर ब्रह्मा का बनाया हुआ एक बड़ा भारी किलाथा। (महान मायावी और निपुण कारीगर) मय दानव ने उसको फिर से सजा दिया। उसमें मणियों से जड़े हुए सोने के अनगिनत महल थे॥3॥

*** भोगावति जसि अहिकुल बासा। अमरावति जसि सक्रनिवासा॥ तिन्ह तें अधिक रम्य अति बंका। जग बिख्यात नाम तेहि लंका॥4॥

भावार्थ:

-जैसी नागकुल के रहने की (पाताल लोक में) भोगावती पुरी है और इन्द्र के रहने की (स्वर्गलोक में) अमरावती पुरी है, उनसे भी अधिक सुंदर और बाँका वह दुर्ग था। जगत में उसका नाम लंका प्रसिद्ध हुआ॥4॥

दोहा :

*** खाईं सिंधु गभीर अति चारिहुँ दिसि फिरि आव। कनक कोट मनि खचित दृढ़ बरनि न जाइ बनाव॥178 क॥

भावार्थ:

-उसे चारों ओर से समुद्र की अत्यन्त गहरी खाई घेरे हुए है। उस (दुर्ग) के मणियों से जड़ा हुआ

सोने का मजबूत परकोटा है, जिसकी कारीगरी का वर्णन नहीं किया जा सकता॥178 (क)॥

*** हरि प्रेरित जेहिं कलप जोइ जातुधानपति होइ। सूर प्रतापी अतुलबल दल समेत बस सोइ॥178 ख॥

भावार्थ:

-भगवान की प्रेरणा से जिस कल्प में जो राक्षसों का राजा (रावण) होता है, वही शूर, प्रतापी, अतुलित बलवान् अपनी सेना सहित उस पुरी में बसता है॥178 (ख)॥

चौपाई :

*** रहे तहाँ निसिचर भट भारे। ते सब सुरन्ह समर संघारे॥ अब तहँ रहहिं सक्र के प्रेरे। रच्छक कोटि जच्छपति केरे॥1॥

भावार्थ:

-(पहले) वहाँ बड़े-बड़े योद्धा राक्षस रहते थे। देवताओं ने उन सबको युद्द में मार डाला। अब इंद्र की प्रेरणा से वहाँ कुबेर के एक करोड़ रक्षक (यक्ष लोग) रहते हैं॥1॥

***दसमुख कतहुँ खबरि असि पाई। सेन साजि गढ़ घेरेसि जाई॥ देखि बिकट भट बड़ि कटकाई। जच्छ जीव लै गए पराई॥2॥

भावार्थ:

-रावण को कहीं ऐसी खबर मिली, तब उसने सेना सजाकर किले को जा घेरा। उस बड़े विकट योद्धा और उसकी बड़ी सेना को देखकर यक्ष अपने प्राण लेकर भाग गए॥2॥

*** फिरि सब नगर दसानन देखा। गयउ सोच सुख भयउ बिसेषा॥ सुंदर सहज अगम अनुमानी। कीन्हि तहाँ रावन रजधानी॥3॥

भावार्थ:

-तब रावण ने घूम-फिरकर सारा नगर देखा। उसकी (स्थान संबंधी) चिन्ता मिट गई और उसे बहुत ही सुख हुआ। उस पुरी को स्वाभाविक ही सुंदर और (बाहर वालों के लिए) दुर्गम अनुमान करके रावण ने वहाँ अपनी राजधानी कायम की॥3॥

*** जेहि जस जोग बाँटि गृह दीन्हे। सुखी सकल रजनीचर कीन्हें॥ एक बार कुबेर पर धावा। पुष्पक जान जीति लै आवा॥4॥

भावार्थ:

-योग्यता के अनुसार घरों को बाँटकर रावण ने सब राक्षसों को सुखी किया। एक बार वह कुबेर पर चढ़ दौड़ा और उससे पुष्पक विमान को जीतकर ले आया॥4॥

दोहा :

*** कौतुकहीं कैलास पुनि लीन्हेसि जाइ उठाइ। मनहुँ तौलि निज बाहुबल चला बहुत सुख पाइ॥179॥

भावार्थ:

-फिर उसने जाकर (एक बार) खिलवाड़ ही में कैलास पर्वत को उठा लिया और मानो अपनी भुजाओं का बल तौलकर, बहुत सुख पाकर वह वहाँ से चला आया॥179॥

चौपाई :

*** सुख संपति सुत सेन सहाई। जय प्रताप बल बुद्धि बड़ाई॥ नित नूतन सब बाढ़त जाई। जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई॥1॥

भावार्थ:

-सुख, सम्पत्ति, पुत्र, सेना, सहायक, जय, प्रताप, बल, बुद्धि और बड़ाई- ये सब उसके नित्य नए (वैसे ही) बढ़ते जाते थे, जैसे प्रत्येक लाभ पर लोभ बढ़ता है॥1॥

*** अतिबल कुंभकरन अस भ्राता। जेहि कहुँ नहिं प्रतिभट जग जाता॥ करइ पान सोवइ षट मासा। जागत होइ तिहूँ पुर त्रासा॥2॥

भावार्थ:

-अत्यन्त बलवान् कुम्भकर्ण सा उसका भाई था, जिसके जोड़ का योद्धा जगत में पैदा ही नहीं हुआ। वह मदिरा पीकर छह महीने सोया करता था। उसके जागते ही तीनों लोकोंमें तहलका मच जाता था॥2॥

*** जौं दिन प्रति अहार कर सोई। बिस्व बेगि सब चौपट होई॥ समर धीर नहिं जाइ बखाना। तेहि सम अमित बीर बलवाना॥3॥

भावार्थ:

-यदि वह प्रतिदिन भोजन करता, तब तो सम्पूर्ण विश्व शीघ्र ही चौपट (खाली) हो जाता। रणधीर ऐसा था कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। (लंका में) उसके ऐसे असंख्य बलवान वीर थे॥3॥

*** बारिदनाद जेठ सुत तासू। भट महुँ प्रथम लीक जग जासू॥ जेहि न होइ रन सनमुख कोई। सुरपुर नितहिं परावन होई॥4॥

भावार्थ:

- मेघनाद रावण का बड़ा लड़का था, जिसका जगत के योद्धाओं में पहला नंबर था। रण में कोई भी उसका सामना नहीं कर सकता था। स्वर्ग में तो (उसके भय से) नित्य भगदड़ मची रहती थी॥4॥

दोहा :

*** कुमुख अकंपन कुलिसरद धूमकेतु अतिकाय। एक एक जग जीति सक ऐसे सुभट निकाय॥180॥

भावार्थ:

-(इनके अतिरिक्त) दुर्मुख, अकम्पन, वज्रदन्त, धूमकेतु और अतिकाय आदि ऐसे अनेक योद्धा थे, जो अकेले ही सारे जगत को जीत सकते थे॥180॥

चौपाई :

*** कामरूप जानहिं सब माया। सपनेहुँ जिन्ह कें धरम न दाया॥ दसमुख बैठ सभाँ एक बारा। देखि अमित आपन परिवारा॥1॥

भावार्थ:

-सभी राक्षस मनमाना रूप बना सकते थे और (आसुरी) माया जानते थे। उनके दया-धर्म स्वप्न में भी नहीं था। एक बार सभा में बैठे हुए रावण ने अपने अगणित परिवार को देखा-॥1॥

*** सुत समूह जन परिजन नाती। गनै को पार निसाचर जाती॥ सेन बिलोकि सहज अभिमानी। बोला बचन क्रोध मद सानी॥2॥

भावार्थ:

-पुत्र-पौत्र, कुटुम्बी और सेवक ढेर-के-ढेर थे। (सारी) राक्षसों की जातियों को तो गिन ही कौन सकता था! अपनी सेना को देखकर स्वभाव से ही अभिमानी रावण क्रोध और गर्व में सनी हुई वाणी बोला-॥2॥

*** सुनहु सकल रजनीचर जूथा। हमरे बैरी बिबुध बरूथा॥ ते सनमुख नहिं करहिं लराई। देखि सबल रिपु जाहिं पराई॥3॥

भावार्थ:

-हे समस्त राक्षसों के दलों! सुनो, देवतागण हमारे शत्रु हैं। वे सामने आकर युद्ध नहीं करते। बलवान शत्रु को देखकर भाग जाते हैं॥3॥

*** तेन्ह कर मरन एक बिधि होई। कहउँ बुझाइ सुनहु अब सोई॥ द्विजभोजन मख होम सराधा। सब कै जाइ करहु तुम्ह बाधा॥4॥

भावार्थ:

-उनका मरण एक ही उपाय से हो सकता है, मैं समझाकर कहता हूँ। अब उसे सुनो। (उनके बल को बढ़ाने वाले) ब्राह्मण भोजन, यज्ञ, हवन और श्राद्ध- इन सबमें जाकर तुम बाधा डालो॥4॥

दोहा :

*** छुधा छीन बलहीन सुर सहजेहिं मिलिहहिं आइ। तब मारिहउँ कि छाड़िहउँ भली भाँति अपनाइ॥181॥

भावार्थ:

-भूख से दुर्बल और बलहीन होकर देवता सहज ही में आ मिलेंगे। तब उनको मैं मार डालूँगा अथवा भलीभाँति अपने अधीन करके (सर्वथा पराधीन करके) छोड़ दूँगा॥181॥

चौपाई :

*** मेघनाद कहूँ पुनि हँकरावा। दीन्हीं सिख बलु बयरु बढ़ावा॥ जे सुर समर धीर बलवाना। जिन्ह कें लरिबे कर अभिमाना॥1॥

भावार्थ:

-फिर उसने मेघनाद को बुलवाया और सिखा-पढ़ाकर उसके बल और देवताओं के प्रति बैरभाव को

उत्तेजना दी। (फिर कहा-) हे पुत्र ! जो देवता रण में धीर और बलवान् हैं और जिन्हें लड़ने का अभिमान है॥1॥

*** तिन्हहि जीति रन आनेसु बाँधी। उठि सुत पितु अनुसासन काँधी॥ एहि बिधि सबही अग्या दीन्हीं। आपुनु चलेउ गदा कर लीन्ही॥2॥

भावार्थ:

-उन्हें युद्ध में जीतकर बाँध लाना। बेटे ने उठकर पिता की आज्ञा को शिरोधार्य किया। इसी तरह उसने सबको आज्ञा दी और आप भी हाथ में गदा लेकर चल दिया॥2॥

*** चलत दसानन डोलति अवनी। गर्जत गर्भ स्रवहिं सुर रवनी॥ रावन आवत सुनेउ सकोहा। देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा॥3॥

भावार्थ:

-रावण के चलने से पृथ्वी डगमगाने लगी और उसकी गर्जना से देवरमणियों के गर्भ गिरने लगे। रावण को क्रोध सहित आते हुए सुनकर देवताओं ने सुमेरु पर्वत कीगुफाएँ तकीं (भागकर सुमेरु की गुफाओं का आश्रय लिया)॥3॥

*** दिगपालन्ह के लोक सुहाए। सूने सकल दसानन पाए॥ पुनि पुनि सिंघनाद करि भारी। देइ देवतन्ह गारि पचारी॥4॥

भावार्थ:

-दिक्पालों के सारे सुंदर लोकों को रावण ने सूना पाया। वह बार-बार भारी सिंहगर्जना करके देवताओं को ललकार-ललकारकर गालियाँ देता था॥4॥

*** रन मद मत्त फिरइ गज धावा। प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा॥ रबि ससि पवन बरुन धनधारी। अगिनि काल जम सब अधिकारी॥5॥

भावार्थ:

-रण के मद में मतवाला होकर वह अपनी जोड़ी का योद्धा खोजता हुआ जगत भर में दौड़ताफिरा, परन्तु उसे ऐसा योद्धा कहीं नहीं मिला। सूर्य, चन्द्रमा, वायु, वरुण, कुबेर, अग्नि, काल और यम आदि सब अधिकारी,॥5॥

*** किंनर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहिं लागा॥ ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दसमुख बसबर्ती नर नारी॥6॥

भावार्थ:

-किन्नर, सिद्ध, मनुष्य, देवता और नाग- सभी के पीछे वह हठपूर्वक पड़ गया (किसी को भी उसने शांतिपूर्वक नहीं बैठने दिया)। ब्रह्माजी की सृष्टि में जहाँ तक शरीरधारी स्त्री-पुरुष थे, सभी रावण के अधीन हो गए॥6॥

*** आयसु करहिं सकल भयभीता। नवहिं आइ नित चरन बिनीता॥7॥

भावार्थ:

-डर के मारे सभी उसकी आज्ञा का पालन करते थे और नित्य आकर नम्रतापूर्वक उसके चरणों में सिर नवाते थे॥7॥

दोहा :

*** भुजबल बिस्व बस्य करि राखेसि कोउ न सुतंत्र। मंडलीक मनि रावन राज करइ निज मंत्र॥182 क॥

भावार्थ:

-उसने भुजाओं के बल से सारे विश्व को वश में कर लिया, किसी को स्वतंत्र नहीं रहने दिया। (इस प्रकार) मंडलीक राजाओं का शिरोमणि (सार्वभौम सम्राट) रावण अपनी इच्छानुसार राज्य करने लगा॥182 (क)॥

*** देव जच्छ गंधर्ब नर किंनर नाग कुमारि। जीति बरीं निज बाहु बल बहु सुंदर बर नारि॥182 ख॥

भावार्थ:

-देवता, यक्ष, गंधर्व, मनुष्य, किन्नर और नागों की कन्याओं तथा बहुत सी अन्य सुंदरी और उत्तम स्त्रियों को उसने अपनी भुजाओं के बल से जीतकर ब्याह लिया॥182 (ख)॥

चौपाई :

*** इंद्रजीत सन जो कछु कहेऊ। सो सब जनु पहिलेहिं करि रहेऊ॥ प्रथमहिं जिन्ह कहुँ आयसु दीन्हा। तिन्ह कर चरित सुनहु जो कीन्हा॥1॥

भावार्थ:

-मेघनाद से उसने जो कुछ कहा, उसे उसने (मेघनाद ने) मानो पहले से ही कर रखा था (अर्थात् रावण के कहने भर की देर थी, उसने आज्ञापालन में तनिक भी देर नहीं की।) जिनको (रावण ने मेघनाद से) पहले ही आज्ञा दे रखी थी, उन्होंने जो करतूतें की उन्हें सुनो॥1॥

*** देखत भीमरूप सब पापी। निसिचर निकर देव परितापी॥ करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया॥2॥

भावार्थ:

-सब राक्षसों के समूह देखने में बड़े भयानक, पापी और देवताओं को दुःख देने वाले थे। वे असुरों के समूह उपद्रव करते थे और माया से अनेकों प्रकार के रूप धरते थे॥2॥

*** जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला॥ जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं॥3॥

भावार्थ:

-जिस प्रकार धर्म की जड़ कटे, वे वही सब वेदविरुद्ध काम करते थे। जिस-जिस स्थान में वे गो और ब्राह्मणों को पाते थे, उसी नगर, गाँव और पुरवे में आग लगा देते थे॥3॥

*** सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव बिप्र गुरु मान न कोई॥ नहिं हरिभगति जग्य तप ग्याना।

सपनेहु सुनिअ न बेद पुराना॥4॥
भावार्थ:
-(उनके डर से) कहीं भी शुभ आचरण (ब्राह्मण भोजन, यज्ञ, श्राद्ध आदि) नहीं होते थे। देवता, ब्राह्मण और गुरु को कोई नहीं मानता था। न हरिभक्ति थी, न यज्ञ, तप और ज्ञान था। वेद और पुराण तो स्वप्न में भी सुनने को नहीं मिलते थे॥4॥ छन्द :
*** जप जोग बिरागा तप मख भागा श्रवन सुनइ दससीसा। आपुनु उठि धावइरहै न पावइ धरि सब घालइ खीसा॥ अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिअ नहिं काना। तेहि बहु बिधि त्रासइ देस निकासइ जो कह बेद पुराना॥
भावार्थ:
-जप, योग, वैराग्य, तप तथा यज्ञ में (देवताओं के) भाग पाने की बात रावण कहीं कानों से सुन पाता, तो (उसी समय) स्वयं उठ दौड़ता। कुछ भी रहने नहीं पाता, वह सबको पकड़कर विध्वंस कर डालता था। संसार में ऐसा भ्रष्ट आचरण फैल गया कि धर्म तो कानों में सुनने में नहीं आता था, जो कोई वेद और पुराण कहता, उसको बहुत तरह से त्रास देता और देश से निकाल देता था।
सोरठा :
*** बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं। हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनि मिति॥183॥
भावार्थ:
-राक्षस लोग जो घोर अत्याचार करते थे, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। हिंसा पर ही जिनकी प्रीति है, उनके पापों का क्या ठिकाना॥183॥ मासपारायण, छठा विश्राम **अगला पेज...**

रामचरित्मानस

बालकाण्ड

रावणादि का जन्म, तपस्या और उनका ऐश्वर्य तथा अत्याचार